प्रवेशांक

शोधामृत

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित अर्धवार्षिक मूल्यांकित शोध पत्रिका

वर्तमान सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द के शिक्षाओं की उपादेयता

Online ISSN-3048-9296
Vol.-1; issue-1 (Jan-Jun) 2024
Page No.-10-14
©2024 Shodhaamrit (Online)
www.Shodhamrit.gyanvividha.com

डॉ.प्रवीण कुमार

ग्राम-छपिया, पोस्ट-गोविन्दपारा, बस्ती, उत्तर प्रदेश.

Corresponding Author :

डॉ.प्रवीण कुमार

ग्राम-छपिया, पोस्ट-गोविन्दपारा, बस्ती, उत्तर प्रदेश.

शोधसार- शिक्षा मानव निर्माण के लिए प्रत्येक युग में अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का सर्वाङ्गीण विकास सम्भव है। जिसके माध्यम से संस्कृति-सभ्यता एवं युगों-युगों से सञ्चित ज्ञान नई पीढ़ियों में सम्प्रेषित किया जाता है उसी को शिक्षा व्यवस्था कहते हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त उन्नत थी, परन्तु विगत शताब्दियों के राजनैतिक तथा सामाजिक उथल-पुथल के कारण क्षत-विक्षत हो गयी थी। परिणामस्वरूप भारत में अविद्या, अशिक्षा, अज्ञान तथा अन्धविश्वास आदि कुरीतियों का प्रचार-प्रसार द्रुतगति से होने लगा था। इन विषम परिस्थितियों एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था की बेड़ियों से मुक्त कराने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को जाता है, ऐसा मानने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है। मानव जीवन के सर्वाङ्गीण विकास के लिए सुव्यवस्थित एवं संस्कारों से युक्त शिक्षा का होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है परन्तु आधुनिक शिक्षा व्यवस्था केवल रोजगारपरक है और यह एक व्यापार बनकर रह गया है। इसमें सदाचार, संस्कार, नैतिकता एवं मानवता का सर्वथा अभाव सा प्रतीत होता है। अध्ययन-अध्यापन का कार्य केवल रोजगार का साधन मात्र है। महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक एवं सार्वभौमिक शिक्षा के प्रबल समर्थक रहे हैं। उन्होंने रोजगारपरक शिक्षा के साथ-साथ चारित्रिक, धार्मिक, नैतिक तथा मानवीय गुणों से युक्त शिक्षा पर विशेष बल दिया है। महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं के क्रियान्वयन से भारत को समुन्नत एवं सुसभ्य नागरिकों से युक्त बनाया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द की शिक्षाएं वर्तमान सन्दर्भ में अत्यन्त उपयोगी हैं।

कूटशब्द- दयानन्द, गुरुकुलीय, शिक्षा, संस्कार, नैतिक, सदाचार, नागरिक, बाल्यकाल, तथा सर्वाङ्गीण।

महर्षि दयानन्द की शिक्षाएं एकांगी न होकर बहुआयामी थी। उन्होंने व्यक्ति तथा समाज के विकास के लिए जिन उद्देश्यों की परिकल्पना की है वे पुरुषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले थे। उनकी शिक्षाओं के क्रियान्वयन से समाज को सुशिक्षित एवं खुशहाल बनाया जा सकता है। वैसे महर्षि की अनेक शिक्षाएं हैं परन्तु

यहां पर कुछ शिक्षाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है-

वर्तमान में मानव समाज स्वार्थी प्रवृत्ति का होता जा रहा है, वह अपने अल्प लाभ हेतु दूसरे व्यक्ति का सर्वस्व हानि करने में जरा-सा भी परहेज नहीं करता है। महाभारत में कहा गया है **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** अर्थात् जो व्यवहार स्वयं के प्रति अच्छा न लगे वह व्यवहार दूसरों के प्रति भी कदापि न करें। **'मत्वा कर्माणि सीव्यति'** निरुक्तकार कहते हैं कि जो विचार पूर्वक कार्य करे वही मनुष्य है, परन्तु चिन्तन कीजिए क्या वर्तमान समय में लोग हित-अहित, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य तथा नीति-अनीति पर विचार करके कार्य करते हैं? तो उत्तर मिलेगा, नहीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश में शिक्षितों का ग्राफ निरन्तर आगे बढ़ रहा है परन्तु नैतिकता का ग्राफ प्रतिदिन गिरता जा रहा है, आखिर कुछ तो कारण होगा इसका? कारण इसका यही है नैतिकता एवं चारित्रिक शिक्षा का अभाव। महर्षि दयानन्द सरस्वती शिक्षा को गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया मानते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि "वह माता धन्य है जो गर्भाधान से लेकर जब तक विद्या पूरी न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे"।[1] अपनी सन्तानों को बाल्यकाल से ही उत्तम शिक्षा देनी चाहिए जिससे वह सुसभ्य नागरिक बन सके। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था वेदों पर आधारित थी जिसे वैदिक शिक्षा व्यवस्था व गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था कहा जाता है। महर्षि ने बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य तथा आवश्यक माना है, क्योंकि ज्ञान को मनुष्य का तृतीय नेत्र कहा गया है।[2] उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सकें ऐसा राज नियम होना चाहिए, और जो न भेजे वह दण्डनीय हो"।[3] गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था में बालक-बालिकाओं के सर्वाङ्गीण विकास पर ध्यान दिया जाता है। परन्तु प्रायः साम्प्रतिक कालीन बच्चों को बाल्यकाल से ही कान्वेंट स्कूल में प्रवेश करा दिया जाता है और वहां पर प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति-सभ्यता, धर्मग्रन्थ एवं महापुरुषों के विषय में मिथ्या एवं भ्रान्तिपूर्ण बातें बतायी जाती हैं जिससे उनके कोमल हृदय एवं निर्मल मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और वही बालक जब बड़ा हो जाता है तब उसका भारतीय संस्कृति-सभ्यता, धर्मग्रन्थ तथा महापुरुषों के ऊपर से विश्वास उठ जाता है अर्थात नकारात्मक भाव आ जाता है। नकारात्मकता के विषय में स्वामी विवेकानंद का कहना है कि, निषेधात्मक शिक्षा मृत्यु से भी भयानक है।[4] बच्चों के मन में नकारात्मक भाव न आये इसके लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने संस्कारों को अधिक महत्व दिया है। उन्होंने संस्कारों के माध्यम से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति की बात कही है। संस्कार शब्द का उपयोग कई अर्थों में किया जाता है, परन्तु इसका मुख्य अर्थ होता है व्यक्ति के विकास और उन्नति की प्रक्रिया। संस्कार विभिन्न प्रकार की शिक्षा, अनुशासन और संस्कृति के द्वारा व्यक्ति को समाज में स्वीकार्य तथा सभ्य बनाती है। महर्षि ने व्यवहारभानु में कहा है कि जो मनुष्य विद्या कम भी जानता हो, परन्तु सभ्य एवं व्यवहार कुशल हो तो उसे शिक्षित कहा जा सकता है।[5] इसलिए इस शिक्षा के द्वारा अपने बालक-बालिकाओं, इष्ट-मित्रों, पड़ोसियों तथा भृत्यों आदि को सदाचरण एवं व्यवहार की शिक्षा देंगे तो परिवार के साथ-साथ समाज भी सुखमय रहेगा। आर्य समाज के सातवें नियम में महर्षि कहते हैं कि "सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिए" अर्थात व्यवहार कुशल होने की शिक्षा दी गयी है। व्यवहार कुशलता के अभाव में परिवार एवं सामाज में बिखराव देखने को मिल रहा है। इसलिए महर्षि का यह उद्देश्य वर्तमान भारतीय जीवन में अत्यधिक प्रासंगिक है।

महर्षि दयानन्द ने धर्म को कर्त्तव्य तथा अधर्म को अकर्त्तव्य की सञ्ज्ञा दी है। वे कहते हैं कि जिस-जिस व्यवहार से दूसरों का हित हो वह धर्म और जिस-जिस व्यवहार से अहित हो वह अधर्म कहलाता है। उन्होंने आर्य समाज के पांचवें नियम में कहा है कि "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए"। महर्षि के इस विचार की जितनी प्रासङ्गिकता उन्नीसवीं शताब्दी में थी उतनी ही प्रासङ्गिकता आज भी है। शिक्षा व चिन्तनशीलता ही मनुष्यों और पशुओं में विभेद पैदा करता है क्योंकि शिक्षा के कारण ही मनुष्य धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, नीति-अनीति तथा पाप-पुण्य का विचार करके कार्य करने में सक्षम होता है। शिक्षित व्यक्ति को इन तथ्यों की पहचान होनी चाहिए। यदि वह इन तथ्यों की पहचान करने में असमर्थ है तो वह

समाज के लिए हितकारी सिद्ध नहीं होगा। वर्तमान शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यही है कि जहाँ व्यक्ति वैज्ञानिक उच्च प्रविधियों तथा ज्ञान के नवीन आयाम से अवगत हो रहा है वहीं अपने सामाजिक कर्तव्यों उचित-अनुचित का भेद करने में असमर्थ हो जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास नहीं हो पाता। सर्वाङ्गीण विकास के लिए कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध होना अत्यावश्यक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने चरित्र-निर्माण एवं नैतिकता के विकास पर भी अत्यधिक बल दिया है। वे सदाचरण एवं नैतिक गुणों के विकास के लिए ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने पर बल देते हैं। महर्षि का मानना है कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास करते हैं वे इस संसार में प्रशंसित होकर सुख भोगते हैं तथा दूसरे जन्म में भी उन्हें उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। उनका कहना है कि विद्या ऐसी होनी चाहिए जिसके अभ्यास से सद्गुणों का विकास हो सके।[6] विद्या के माध्यम से ईमानदारी, सदाचरण तथा विनम्रता जैसे मानवीय गुणों का विकास होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा यद्यपि गुणात्मक रूप से उन्नत है, क्योंकि इस शिक्षा के सैद्धान्तिक ज्ञान से एक अच्छा इंजीनियर, चिकित्सक तथा कुशल प्रशासक का निर्माण किया जा सकता है परन्तु पूर्ण विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि वे चरित्रवान व नैतिक गुणों से परिपूर्ण होंगे और यदि इन गुणों से परिपूर्ण नहीं हैं तो सामाजिक विकास नहीं कहा जा सकता है। किसी भी समाज का उत्कर्ष उनके नागरिकों के चरित्र और नैतिक गुणों से होता है। लेकिन इन्हीं गुणों के अभाव में समाज का पतन भी होता है। आजकल केवल लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार को ही चरित्र-हीनता का पर्याय माना जाता है जबकि इसका अर्थ सङ्कुचित न होकर बहुत व्यापक है। भारतीय समाज में इन्हीं गुणों के अभाव में अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही है। क्या बलात्कार, चोरी, डकैती, ठगी, हत्या, धोखाधड़ी तथा भ्रष्टाचार इत्यादि अनेक दुष्कृत्य चरित्र-हीनता में नहीं आते? अवश्य आते हैं। जिसके कारण सरकार के लाख प्रयत्न करने के बाद भी न तो आर्थिक उन्नति हो पा रही है और न ही सामाजिक समरसता का विकास हो पा रहा है। नैतिक एवं चरित्रिक मूल्यों के ह्रास होने के कारण स्वार्थपरता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं जिससे मानवीय मूल्यों में काफी गिरावट आ रही है। चारित्रिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास के लिए हमें प्रारम्भिक शिक्षा से ही ध्यान देना पड़ेगा जिसके लिए महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में अनेकों स्थानों पर उल्लेख किया है।

जीवन को संयमित और श्रेष्ठ बनाने के लिए महर्षि दयानन्द आश्रम व्यवस्था को अत्यन्त उपयोगी मानते हैं। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में इसकी व्यापक चर्चा की है। ब्रह्मचर्य आश्रम को विद्या ग्रहण करने का काल माना गया है इस काल में प्रत्येक को अपने शरीर को पुष्ट एवं ज्ञानार्जन करने में बिताना चाहिए। महर्षि ज्ञानवान एवं पुष्ट शरीर वाले लोगों को ही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की सलाह देते हैं क्योंकि इसे कर्मक्षेत्र की अवस्था कही जाती है, इसमें धर्मपूर्वक अर्थ तथा सुख (काम) की प्राप्ति मुख्य उद्देश्य होता है। जीवन-यापन हेतु भौतिक संसाधनों की भी आवश्यकता होती है, इन भौतिक संसाधनों की प्राप्ति यदि धर्म युक्त व्यवहार से नहीं किया गया तो वह साध्य पवित्र नहीं होता, अर्थात् उचित साधनों का प्रयोग करना चाहिए। इन कर्त्तव्यों का पालन वही कर सकता है जिसने विद्या-अविद्या, धर्म-अधर्म के प्रत्ययों को भली-भाँति समझा है। गृहस्थ आश्रमों के समस्त दायित्वों को पूर्ण करने के पश्चात् व्यक्ति सामाजिक कल्याण हेतु वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करता है।[7] उसके पश्चात् वह मोक्ष की प्राप्ति हेतु संन्यास की ओर अग्रसर होता है। सांसारिक बन्धनों एवं आवागमन के चक्र से मुक्ति पाने हेतु व्यक्ति जब शास्त्रोक्त विधि से साधना करता है तो उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसके लिए आध्यात्मिक और शस्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। जिसे वेदादि सत् शास्त्रों के अध्ययन एवं साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है। वेदों में पुरुषार्थ चतुष्ट्य की चर्चा की गयी है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को ही पुरुषार्थ चतुष्ट्य कहा जाता है। इसका मूल उद्देश्य मानव जीवन को भौतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नत करना है। महर्षि दयानन्द सदैव इसके पक्षधर रहे हैं कि सभी लोगों को धर्मपूर्वक अर्थ तथा काम को प्राप्त करके मोक्ष के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि में आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों बिन्दुओं का समन्वय होता है। परन्तु साम्प्रतिक कालिक शिक्षा-व्यवस्था में इनका समन्वय देखने को नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में मानव जीवन के सर्वाङ्गीण विकास के लिए महर्षि का उद्देश्य प्रासङ्गिक है।

महर्षि दयानन्द का आर्थिक चिन्तन राष्ट्रीय एवं राजनैतिक विचारधारा से ही सम्बन्धित है। उन्होंने देशवासियों की धनहीनता, कृषक वर्ग का शोषण, मध्यमवर्गीय जीवन व्यतीत करने वाले आमजनमानस के दुःखों को देखकर अनेक बार व्याकुलता प्रकट की थी। उनके जीवन में कई ऐसे प्रसङ्ग आये जब वे सांसारिकता से पृथक रहकर मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करें परन्तु देश की दुर्दशा को देखकर उन्होंने देश की दशा और दिशा सुधारने का निर्णय लिया। देश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाने के लिए उन्होंने अनेक योजना बनाई तथा उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयास किया। जहाँ वे वाणिज्य, व्यवसाय तथा औद्योगीकरण के पक्षधर थे वहीँ घरेलू उद्योगों तथा ग्रामीण आर्थिक परिस्थितियों से अन्भिज्ञ नहीं थे। जो उन्होंने "गोवध निषेध" महाभियान चलाया उसके पीछे केवल धार्मिक भावावेश ही नहीं अपितु आर्थिक दृष्टिकोण भी था। उन्होंने गौ की महत्ता बताने के लिए "गोकरुणानिधि" नामक ग्रन्थ की रचना भी की। महर्षि आध्यात्मिक शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा के भी पक्षधर थे। वैदिक काल में भी व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी। कृषि, पशुपालन, शिल्पकला, वस्तुकला, शस्त्र निर्माण, आयुर्वैदिक चिकित्सा, शल्य चिकित्सा तथा पौरोहित्य प्रशिक्षण इत्यादि की शिक्षा प्राचीन काल में दी जाती थी। जैसा कि आप सभी भली प्रकार से जानते हैं वेदादि शास्त्रों में वर्णव्यवस्था का आधार गुण तथा कर्म को माना गया है। महर्षि भी उन्हीं मान्यताओं का पूर्णतया समर्थन करते हुए कहते हैं कि गुण, कर्म तथा योग्यता के आधार पर वर्णों का विभाजन होना चाहिए और उनके उन्हीं योग्यताओं के आधार पर उन्हें विद्या दी जानी चाहिए। ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या, क्षत्रीय को युद्धविद्या तथा वैश्य को व्यावसायिक विद्या सिखाया जाना चाहिए। संस्कार विधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण में वे सभी वर्णों को व्यावसायिक शिक्षा देने के विषय में कहते हैं कि, ब्राह्मण के तीन प्रमुख कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना तथा दान लेना ये आजीविका के साधन है परन्तु जो दान लेना है वह नीच कर्म है[8] किन्तु पढ़ाके और यज्ञ कराके आजीविका चलाना उत्तम है। प्रजाओं का सभी प्रकार से यथावत पालन करना, शस्त्रविद्या पढ़ाना, न्यायोचित व्यवहार तथा सेना में जीविका करना क्षत्रियों की आजीविका है।[9] गाय आदि पशुओं का पालन करना, उनके दूध को बेचना, अनेक देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भ विद्या, भूमि तथा बीजादि के गुणों को जानना और सब पदार्थों के भाव जानना-समझना, ब्याज लेना इत्यादि कर्म वैश्य की आजीविका के साधन हैं।[10] शूद्रों के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित होकर प्रीतिपूर्वक सेवा करना यही एक कर्म है।[11]

समाज में व्याप्त कुरीतियों, विषमताओं, शोषण की प्रवृत्तियों एवं अत्याचार मूलक प्रथाओं को नष्ट करने में दयानन्द के प्रयासों का सभी ने अभिनन्दन किया है। पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को खोखला बनाने वाली प्रथाओं का जिस प्रकार उन्होंने विरोध किया वह सब ऐतिहासिक विवेचनाओं के रूप में विद्यमान है। अतः बाल-विवाह उन्मूलन, विधवाओं की स्थिति को सुधारने के लिए पुनर्विवाह का समर्थन, स्त्रियों की शिक्षा एवं समान अधिकार हेतु अनेकों कार्य किए। दलित एवं अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों को उनका अधिकार दिलाने, जन्मगत जाति-प्रथा के दोषों की ओर आम जनमानस का ध्यान आकर्षित करना इत्यादि कार्य उनके द्वारा सम्पादित किया गया।

महर्षि का जन्म ऐसी परिस्थिति में हुआ जब देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। राजा-रजवाड़े, जमींदार, बौद्धिक वर्ग के लोग पाश्चात्य मानसिकता से ग्रस्त होकर अंग्रेजों की तरफदारी करते थे जिससे उनके अन्दर स्वदेश-प्रेम की भावना में कमी आ रही थी। दूसरी ओर छुआ-छूत, जात-पात, ऊँच-नीच तथा अमीर-गरीब का भेद-भाव अपनी चरमसीमा पर था और अन्धविश्वास, पाखण्ड तथा धर्मांधता भी अपनी पराकाष्ठा पर थी। इसलिए उन्होंने उक्त विषमताओं के निराकरण के लिए शिक्षा में ऐसे प्रावधानों का समावेश किया जिससे व्यक्तित्व का निर्माण, धार्मिक आडम्बरों, अन्धविश्वासों के प्रति अविश्वास तथा देशभक्ति की भावना का विकास हो। इसलिए महर्षि जीवन की पवित्रता पर अधिक बल देते थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, अन्धविश्वासों को तोड़ने का सफल प्रयास किया। वहीँ छुआ-छूत, जाति-प्रथा और जन्मना वर्ण व्यवस्था जैसे परम्पराओं का विरोध करके समाज को एक नवीन ढांचे में ढालने का प्रयास किया है, जिसमें सभी जातियों के लोग एक साथ मिलकर अपने सभी सामाजिक कार्यों का सम्पादन एवं देश की उन्नति के लिए मिलकर कार्य कर सके। उनका यह उद्देश्य

आज के परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है क्योंकि अभी भी जात-पात के विचार, अन्धविश्वास तथा पाखण्ड की जड़े अभी भी समाप्त नहीं हुई है।

महर्षि ने लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व ही अपनी दूरदृष्टिता से इन मूल्यों की आवश्यकता अनुभव की थी और अपनी शिक्षापद्धति में मुख्य लक्ष्यों 'मानव के सर्वसङ्गीण विकास', 'स्वराष्ट्रोन्नति', और 'मानवीय गुणों के विकास' अर्थात् संविधान की भाषा में कहें तो समानता, समता एवं बन्धुता को रखा था। इस प्रकार पौराणिक शिक्षा पद्धति की संकीर्ण विचारधारा को मिटाकर मानवता के लिए समान शिक्षा का उद्घोष कर, उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

आज इस बात की आवश्यकता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी एवं उनके कार्यों से भावी पीढ़ियों को अवगत कराने हेतु शैक्षिक-पाठ्यक्रमों में किस प्रकार स्थान दिया जाए, उस दिशा में विचार किये जाने की आवश्यकता है। जैसे- अनिवार्य शिक्षा, स्त्री शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, छुआ-छूत एवं जातीय भेद-भाव उन्मूलन, वर्णानुसार शिक्षा सम्बन्धी उपयोगिताओं से अवगत कराया जाए। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक दर्शन पर विस्तार पूर्वक चर्चा करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची-

1. "प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान" सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृ०-33, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2012
2. "ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं समस्ततत्त्वार्थविलोकदक्षम्" सुभाषितरत्न सन्दोह, ज्ञान निरूपण खण्ड, श्लोक-194, पृ०-26, प्रकाशक, निर्णय सागर यन्त्रालय, मुम्बई, 1903 सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास, पृ०-41, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2012
3. शिक्षा का आदर्श, स्वामी विवेकानन्द, प्रकाशक - स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्णमठ नागपुर, पृ०- 43-44, सन्-2009
4. व्यवहारभानु, महर्षि दयानन्द, पृ०-46, प्रकाशक, आचार्य बलदेव, जीन्द हरियाणा, 2007
5. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास, पृ०- 45-48, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2012
6. सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास, पृ०- 105, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2012
7. संस्कारविधि, गृहस्थाश्रम (ब्रह्मणस्वरूपलक्षणम्) प्रकरण, पृ०-172, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2006
8. संस्कारविधि, गृहस्थाश्रम (क्षत्रियस्वरूपलक्षणम्) प्रकरण, पृ०-173, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2006
9. संस्कारविधि, गृहस्थाश्रम (वैश्यस्वरूपलक्षणम्) प्रकरण, पृ०-174, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2006
10. संस्कारविधि, गृहस्थाश्रम (शूद्रस्वरूपलक्षणम्) प्रकरण, पृ०-175, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2006
11. द्रष्टव्य- सत्यार्थ प्रकाश एकादशसमुल्लास, प्रकाशक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण- 76, 2012

....